भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–11, अंक–8 गुरुवार, 25 अग. '88	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे	वार्षिक चन्दा–10.00 प्रति अंक : 1.00

प्रगट प्रभु के प्रागट्य के अवसर.....

परम सौभाग्य का दिन.....पहली सितम्बर... हमारे आध्यात्मिक जीवन के पिता प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. पप्पाजी महाराज की जन्म जयंती का महामंगलकारी दिन है। प.पू. पप्पाजी जैसी दिव्य विभूति की महिमा को शब्दों से समेट लेना अत्यंत मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। परन्तु ऐसे सोच में कहीं हम अपनी भक्ति चूक ना जायें ! प्रभुधारक सच्चे संत तो केवल भक्तों की भावना देखते है.....तो, आओ, आओ हम सब मिलकर भावना के फूल इनके चरणों में समर्पित करके अपना जीवन धन्य बनायें.....

हम सब कितने भाग्यशाली हैं जो बिना कोई तप, व्रत, साधन किये भगवत्स्वरूप प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसाद स्वामिजी, प.पू. अक्षरविहारी स्वामिजी, प.पू. साहेब जैसे परम पवित्र संतों की गोद में बैठ गये ! हम नहीं बैठे, पर इन्होंने स्वयं करुणा बरसा कर गरजु बनकर हमें बिठा लिया !! ऐसे गुणातीत पुरुषों के जीवन की प्रत्येक सेकण्ड अपने अल्प संबंध वाले मुक्तों के लिये ही होती है। मनुष्य देह धारण करके स्वयं का देह की लेशमात्र गिनती किये बिना अपने संबंध में आये चैतन्यों को इन्द्रियां, अन्तःकरण, मन, बुद्धि के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर प्रभु से दृढ़ संबंध कराने ही इनका अविरत उद्यम रहता है। इसलये ही तो इतनी उम्र होते हुए भी केवल भक्तों को भगवान की मूर्ति में जोड़ने देह को गिने बिना, रात व दिन देखे बिना सतत् देश-विदेश का विचरण कर रहे हैं।

प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी व प.पू. कान्ति काका ने प.पू. बापा के अभिप्राय को जानकर तन, मन, धन, देह कुटुंब परिवार सहित भगवान व भगवान के भक्तों के लिये ही सर्वस्व याहोम कर दिया। इनकी शूरवीरता, दृढ़ निश्चय, अटूट निष्ठा को देखकर देह, लोक, भोग, पक्ष तनिक भी बाधारूप नहीं बन सका।

प.पू. पप्पाजी के जीवन का एक प्रसंग निहारें जो हमें दर्शन कराता है कि वे हमसे क्या चाहते हैं?

1987 में दिल्ली से प.पू. कान्तिकाका की अस्थिविसर्जन विधि के लिये सब हरिद्वार गये थे। साथ में प.पू. पप्पाजी, प.पू. सोनाबा, पू. ज्योति बहन भी थे। एक दिन प.पू. पप्पाजी दोपहर को भोजन ग्रहण करने बैठे। पू. ज्योति बहन ने एक नैपकिन आगे रखने उनको दिया। प.पू. पप्पाजी ने नैपकिन देखकर कहा कि मैं इतना गन्दा नैपकिन Use नहीं करता। पू. ज्योति बहन ने वह नैपकिन वापस लेकर दूसरा साफ नैपकिन प.पू. पप्पाजी को दिया। प.पू. पप्पाजी ने वह अपने आगे बिछाते हुए पूछाः 'यह नैपनिक नया है?' पू. ज्योति बहन ने हाथ जोड़कर कहा, 'नहीं पप्पाजी....यह नैपकिन नया तो नहीं है use करा हुआ है।' प.पू. पप्पाजी यह जवाब सुनकर अत्यंत राजी होकर बोले–

'बस इतना ही चाहिये, स्वरूप के पास तुम निष्कपट होकर सच्चा बोलो उसी को वह बहुत बड़ी सेवा मान लेता है।'

इस प्रसंग को यदि गहराई से सोचें तो कितनी छोटी सी चीज को सेवा मानकर कितना बड़ा जीवन सूत्र प.पू. पप्पाजी ने दे दिया। सच में इन गुणातीत पुरुषों को पाकर हम धन्य हो गये! उन्हें पहचान कर हल्के फूल होकर सुख रूप मूर्ति में आनन्द मगन रह कर मौज लूटने का यह स्वर्ण अवसर है तो इस पावन अवसर पर प.पू. पप्पाजी के पुनीत चरणों में दिल से प्रार्थना–हे पप्पाजी ! हम कैसे भी हैं पर आप कोई भी उपाय लेकर हमारी जड़ता, स्वभाव, माया के भयंकर बन्धनों से मुक्त करा देना। व बाकी प्रार्थना आप चाहे हमारी मानो या नहीं मानो पर एक प्रार्थना जरूर मानना आप निरोगी व स्वस्थ स्वास्थ्य से दीर्घायु बनकर हम सब पर अपनी सेरे छाया शत वर्षों तक बनाये रखना यही आरजु.....

❖❖❖

आध्यात्मिक ब्रेक

साक्षात् धाम, धामी और मुक्तों को पहचाना–दिव्य माना–महिमा असाधारण समझी सो भागवत धर्म शुरू हुआ। उसके लिये (ऐसे श्रेयार्थी के लिए) प्रत्यक्ष मूर्ति के प्रति की वफादारी–पतिव्रता धर्म वही स्वधर्म !

निष्ठा हुई–दृष्टा स्थापित हो गया, सो अंतर की इच्छा प्रत्यक्ष स्वरूप को वफादार रहकर वर्तने की होगी ही; पर स्थूल व सूक्ष्म, इन्द्रियों व अन्तःकरण, स्वभाव-प्रकृति, नात-जात–वासना या लोक-भोग-देह व पक्ष स्वधर्म (पालने) में मिलावट करा ही देता है।

उसे दिखाने के लिये साक्षात् स्वरूप आध्यात्मिक ब्रेक इस्तेमाल करता है। तुम स्वधर्म युक्त जो वर्तते हो वह गलत है, भूल से भरा है, तुम्हारे मान-स्वाद-स्नेह-लोभ या कामना से लिप्त है (रंगा हुआ है) ऐसा दूसरे मुक्तों द्वारा दिखाते हैं।

उसे यदि देखेंगे तो हमारे ही साकार स्वरूप का–गाढ़े हुए स्वरूप दर्शन होगा–प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा। इसलिये उस समय स्वयं का दोष देखकर साक्षात् को याद करके वह दोष टालने की प्रार्थना परिताप करके करें तो तत्काल (उसी पल) आगे जायेंगे।

बाहर जो अवरोध चुभते–बाधा करते दिखाई पड़ते हैं, वह हमारी ही भीतर की वृत्तियों के साक्षात् स्वरूप हैं जो स्वधर्म में मिलावट करा देते हैं और स्वयं के साथ ही धोखा-धड़ी कराके एकांतिकी सिद्ध दशा प्राप्त करने से अटका देते हैं।

चाहे हमारी कितनी ही अनिच्छा हो तब भी प्रत्यक्ष स्वरूप अतिशय दया करके उसे सामने लाते हैं और जब तक अंतर्दृष्टि न करें तब तक अधिक से अधिक तीव्र रूप से लाते ही रहेंगे।

इसलिये वच. अं. प्र. 26 के मुताबिक निरंतर अनुवृत्ति का झरण झेलते हो कर उसके अनुसार ही वर्तते होवें तब तक ज्ञानस्वरूपी विचार को पकड़े रखकर–जहां चुभ जाये वहां अंतर्दृष्टि करके–जागरूकता रखकर–खुद का ही कर लेने की तान (लगन) रखना।

–प.पू. पप्पाजी

❖❖❖

श्रावणी पूर्णिमा 'रक्षाबन्धन'

रक्षाबन्धन का परम पवित्र त्यौहार नजदीक आ रहा है। लौकिक दृष्टि से रक्षाबन्धन अर्थात् भाई व बहन के बीच का निर्मल, निःस्वार्थ पवित्र व निष्काम प्रेम संबंध को दृढ़ करने का प्रतीक रूप पवित्र पर्व। इस त्यौहार के शुरू होने की कहानी सर्वविदित है ही। इस दिन भाई बहन को उसकी रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व जीवन-भर निभाने प्रतिज्ञा बद्ध होता है।

सही दृष्टि से देखा जाये तो 'रक्षा' हरेक को चाहिये और सच्ची 'रक्षा' तो केवल प्रभु या प्रभु को अखंड रखे साथु की सेरे छाया में ही प्राप्त हो सकती है।

आध्यात्मिक दृष्टि से यह पर्व गुरु और शिष्य के संबंध को दृढ़ करने का परिचय देता है। वास्तव में तो प्रभु धारण किये सच्चे संत अपनी शरण में आये हुए भक्त को उसके बिना कहे सर्वदा रक्षा करने का अभयदान दे ही देते हैं। सच्चे संत का स्वभाव ही जीव पर करुणा बरसाने का है। काल, कर्म, माया का कायदा जो जगत के हर जीव को लगता है वह संत की सेरे छाया में आये आश्रित 'भक्त' को लागू नहीं होता।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में स्पष्ट कहा है 'न में भक्तः प्राणश्यति' अर्थात् मैं अपने भक्त का नाश नहीं होने दूँगा। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण ने भी 207 साल पहले अपने आश्रित को काल, कर्म, माया, प्रकृति व प्रारब्ध से अखंड रक्षा करने का वरदान तो दिया ही, साथ ही अपने भक्तों के सुख के नहीं–दुःख के भागीदार बने !

समय-समय पर अवतार पुरुषों ने अपने भक्तों के संकल्प पूरे करके सुखी किया, पर सनातन स्वरूप में–सहज ही आनन्द की अवस्था में तो भगवान स्वामिनारायण ने ही रखे। 'सुहृद् सर्वाभूतानाम्' की भावना से सभी भक्तों के सुख-दुःख प्रभु गांव-गांव जाकर स्वयं सुनते थे। अकाल के दिनों में रात या दिन, सर्दी या गर्मी की परवाह किये बिना भक्तों के घर पहुंच जाते थे। उनकी भक्तों के प्रति कैसी अनोखी प्रीति होगी?

भक्तों का ध्यान रखकर, गरजु बनकर भक्त को ही प्रभुमय बना देने वाली यह अद्भुत विभूति कैसी होगी ! और 'गुणातीत' द्वारा वह परंपरा अखंडित रही–रहेगी, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ! चाहे

भक्त याद करे या ना करे, आज्ञा पाले या ना पाले पर संत अपनी शरण में आये हुए को कभी भूले नहीं ऐसे सच्चे 'गुणातीत' संत का यह दर्शन है—आज भी है।

तो ऐसे समर्थ स्वरूपों के चरणों में प्रार्थना कि काल, कर्म, माया से तो आपने हमें सुरक्षित केवल करुणा करके करे हैं, परन्तु अब हमारे अन्तर में सूक्ष्मरूप से छिपे 51 भूतों से आप हमारी रक्षा करना। हमारे बन्दर जैसे चंचल मन, इन्द्रियां—अन्तःकरण का प्रवाह कठिन परिस्थितियों में भी प्रभु सन्मुख ही रहे.....जगत सन्मुख ना हो जाये ऐसा मोड़ देना।

अभाव, विक्षेप, उलझन, उदासीनता में जो हम मन के आधीन होकर बार-बार चले जाते हैं, अपनी जड़ता के कारण आपके होकर जीने में जो बाधा रूप स्वभाव हम छोड़ नहीं पाते—वह सम्पूर्णतया छोड़कर अब एक विवेक से भजन का बल लेकर अन्धकार की भूमिका से निकल कर दिव्य प्रकाश मे चले जायें। संत के पास निष्कपट होकर, प.पू. काकाजी के शब्दों में बिल्ली का बच्चा बनकर उनसे एक आध्यात्मिक संबंध दृढ़ कर लें। भव्य प्राप्ति के आनंद में मस्त रहें यही रक्षाबन्धन के पावन अवसर पर गुणातीत स्वरूपों के चरणों में प्रार्थना !

❖❖❖

.....और श्रीजी महाराज ने कहा—

....ऐसी समाधि जो होती है उसके दो प्रकार हैं—एक तो प्राणायाम से प्राण का निरोध होता है, साथ-साथ चित्त का भी निरोध हो जाता है। दूसरा—यह है कि चित्त के निरोध से प्राण का निरोध होता है। चित्त का वह निरोध कब होता है? तो सभी विषय से हटकर वृत्ति जब एक भगवान में जुड़ जाये तभी चित्त का निरोध होता है। भगवान में वृत्ति तभी जुड़ पाती है जब—सभी विषयों से वासना मिट कर एक भगवान के स्वरूप की ही वासना हो जाये तब किसी के भी हटाने से वह वृत्ति भगवान के स्वरूप में से पीछे हट नहीं सकती....

.....और प्राण से जो चित्तवृत्ति निरोध होता है वह तो अष्टांगयोग द्वारा होता है। वह अष्टांगयोग तो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि के आठ अंगों से युक्त है। अष्टांगयोग वह साधन है, और उसका फल तो भगवान में 'निर्विकल्प समाधि' है। जब ऐसी निर्विकल्प समाधि होती है तब प्राण के निरोध से चित्त का निरोध होता है और यदि चित्त निर्वासनिक होकर भगवान में जुड़ जाता है तो ऐसे चित्तनिरोध सेप्राण का निरोध हो जाता है। अतः जैसे अष्टांगयोग साधने से चित्त का निरोध होता है वैसे ही भगवान के स्वरूप में वृत्ति जोड़ देने से चित्त का निरोध हो जाता है। इसलिये जो भक्त की चित्त-वृत्ति भगवान के स्वरूप में लग गई उसे अष्टांगयोग बिना साधे सिद्ध हो गया !

गढ़डा प्रथम प्रकरण-25
शुकवार, 23 दिम्बर 1819

PUBLISHED By SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. (India) Tel. : 7128838, 7229327
Printed at R.P. Printers, Shahadra, Delhi-110 032